(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

REVIEW AND STUDY OF THE COSMIC LIFE OF PATANJAL'S YOGASUTRAS

Dr Sita Rathore
Associate Professor, Department of Sanskrit, MMH College, Ghaziabad

पतंजल योगसूत्रों का इहलौकिक जीवन का समीक्षण व अध्ययन

डॉ. सीता राठौर
एसो. प्रो., संस्कृत विभाग, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद

ABSTRACT

The importance of yoga philosophy, in the Sangdarshan Community in Theist Tradition of Indian Philosophy, is not only in the form of Kaivalya or specific knowledge of attainment of salvation, but how does the yoga tradition affect human life even in the supernatural life - it is a matter of exploration of this article. Due to the fear of expansion, only the Patanjal Yoga Sutras have been presented and submitted for review.

भूमिका

भारतीय दर्शन की आस्तिक परम्परा में षड्दर्शन सम्प्रदाय में योग दर्शन का महत्त्व जीवन के परम पुरुषार्थ कैवल्य अथवा मो़क्ष–प्राप्ति के विशिष्ट ज्ञान के रूप में तो है ही, किन्तु इहलौकिक जीवन में भी योग–परम्परा मानव जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है–यह इस पत्र की गवेषणा का विषय है। विस्तारभय से पातंजल योगसूत्रों को ही समीक्षणार्थ प्रस्तुत एवं पर्यालोचित किया गया है।

रचयिता एवं रचना काल

जे.एच्. वूड्स के मतानुसार योगसूत्रों के रचनाकार पतंजलि ने चौथी या पाँचवी शताब्दी में इस ग्रन्थ की रचना की। यह महाभाष्यकार पतंजलि एवं योगसूत्रकार पतंजलि में अन्तर स्वीकार करते हैं। किन्तु डा. एस.एम. दासगुप्ता, श्री ज्वाला प्रसाद, रिचर्ड गार्बे, बी. लाइबिश्, मरकिया एलियड आदि विद्वानों के अनुसार योगसूत्रकार ही महाभाष्यकार हैं। अतः पतंजलि का काल राजा पुष्यमित्र शुंग के समान द्वितीय शताब्दी ई.पू. है।[1]

(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

सामान्य–परिचय

योगसूत्रों को चार पादों में समाहित कर विषय का विवेचन किया गया है

- *समाधिपाद 51 सूत्र*
- *साधनपाद 55 सूत्र*
- *विभूतिपाद 55 सूत्र*
- *कैवल्यपाद 34 सूत्र*

कुल सूत्रों की संख्या 195 है। योगसूत्रों पर प्रथमतः व्यासकृत भाष्य रचा गया। इसे योगभाष्य, व्यासभाष्य, पातंजलभाष्य, सांख्यप्रवचनभाष्य आदि नामों से भी जाना जाता है। इस भाष्य का रचनाकाल दूसरी शताब्दी ईस्वी माना गया है। आचार्य वाचस्पति मिश्र ने 841 ई. में व्यासभाष्य पर तत्त्ववैशारदी टीका लिखी। 11वीं शताब्दी में लिखी गई भोजराज की राजमार्तण्डवृत्ति ख्यात वृत्ति है। आचार्य विज्ञानभिक्षु ने 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में योगवार्तिक लिखे। इन प्रमुख व्याख्यात्मक कार्यों के अनन्तर भी आचार्यों ने योगसूत्रों पर टीकाएं लिखीं।[2]

विषय–प्रवेश : चित्त–शुद्धि के परिकर्म

इहलौकिक जीवन में मनुष्य को प्रथमतः चित्त की चंचलता एवं अशुद्धि बाधित करती है। आचार्य पतंजलि ने चित्त शुद्धि हेतु निम्नलिखित परिकर्म बताएं हैं–

चित्त का प्रथम परिकर्म

आचार्य ने चित्त की शुद्धि हेतु प्रथम उपाय बताया है –

'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां
भावनातश्चित्तप्रसादनम्।'[3]

अर्थात् सुखी व्यक्ति से मित्रता; दुःखी व्यक्ति के प्रति करुणा; पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता एवं पापात्माओं के प्रति उपेक्षा की भावना करने से मनुष्य का चित्त प्रसन्न होता है। योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षु ने इस परिकर्म को 'स्थितिढाढ्र्यहेतु परिष्कारः' कहा है; तो भोजराज ने राजमार्तण्डवृत्ति में इस प्रथम परिकर्म को 'एतद् बाह्यं कर्म' कहा है। अतः यह चित्त की परिशुद्धि का प्रथम परिष्कार है। इहलौकिक पक्ष में यह चित्तकर्म अत्यावश्यक है। सुखी व्यक्ति के साथ मित्रता करने से मनुष्य का मनोबल उच्च एवं जीवन में आह्लादकत्व की उपस्थिति रहेगी। दुःखी व्यक्ति के प्रति करुणा की एवं सहायता की भावना तो रखनी चाहिए; किन्तु मित्रता उचित नहीं। अन्यथा मनुष्य का चित्त ऋणात्मक आवेशों की प्रति अनुरक्त होगा एवं वह स्वयं पतित हो जाएगा। सुखी व्यक्ति से मित्रता में ईर्ष्या–द्वेष आदि भावनाओं का साक्षात् भी नहीं होगा; किन्तु दुःखी व्यक्ति से मित्रता करने पर इहलोक में मनुष्य को ईर्ष्या–द्वेष आदि की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। पुण्यकर्मों के कर्त्ता को देखकर मुदिता अथवा

(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

प्रसन्नता की भावना से मनुष्य स्वयं को उत्कर्ष मार्ग की ओर ले जाता है, जबकि पापकर्त्ता के प्रति उपेक्षा का व्यवहार करके स्वयं को पापों से बचाता है।

चित्त का द्वितीय परिकर्म

यह परिकर्म वर्तमान में काफी लोकप्रिय है। प्राणायाम अब योगसाधकों के मध्य–मात्र नहीं अपितु भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश के लगभग प्रत्येक सामाजिक समूह में बहुप्रचलित है। योगसूत्र के अनुसार प्राणों का रेचक, पूरक एवं कुम्भक करने से चित्त की प्रसन्नता की लब्धि होती है–

'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य'[4]

व्यास भाषा में इस सूत्र को पुनः व्याख्यायित किया गया है कि भीतरी वायु को नाक से बाहर निकालना प्रच्छर्दन है। विधारण प्राणायाम से पूरक एवं कुम्भक का ग्रहण होता है। इनके अभ्यास से मन की स्थिरता आती है–

'कोष्ठ्यस्य वायोर्नासिकापुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद्वमनं प्रच्छर्दनम्।
विधारणं प्राणायामः। ताभ्यां वा मनसः स्थितिं सम्पादयेत्।'[5]

चित्त का तृतीय परिकर्म

योगसूत्रभाष्यकार के अनुसार गन्धादि पाँच प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होने पर उनके विषय में वशीकार संज्ञा वैराग्य उत्पन्न होने पर योगसाधक उन तत्त्वों का साक्षात्कार करता है और उसे श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधि निर्बाध रूप से सिद्ध हो जाएगी। यह पाँच प्रवृत्तियाँ हैं – नासिका के अग्रभाग में दिव्यगन्ध का साक्षात्कार कराने वाली गन्धप्रवृत्ति; जिह्वा के अग्रभाग में दिव्यरसका साक्षात्कार कराने वाली रसप्रवृत्ति; तालु में दिव्यरूप का साक्षात्कार कराने वाली रूपप्रवृत्ति; जिह्वा के मध्य भाग में दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार कराने वाली स्पर्शप्रवृत्ति तथा जिह्वा की जड़ में दिव्य शब्द का साक्षात्कार कराने वाली 'शब्दप्रवृत्ति' हैं। यह प्रवृत्तियाँ चित्त को स्थिर करती हैं; संशय को दूर करती हैं तथा समाधिप्रज्ञा में द्वार बनकर योगसिद्धि में सहायक बनती हैं।

''नासिकाग्रे धारयतोऽस्य या दिव्यगन्धसंवित् सा गन्धप्रवृत्तिः।
जिह्वाग्रे रससंवित्। तालुनि रूपसंवित्। जिह्वाग्रे स्पर्शसंवित्।
जिह्वामूले शब्दसंविदित्येताः वृत्तय उत्पन्नाश्चित्तं स्थितौ निबध्नन्ति,
संशयं विधमन्ति, समाधिप्रज्ञायां च द्वारीभवन्ति।''[6]

महर्षि पतंजलि ने गन्धादि पाँच विषयों का साक्षात्कार करने वाली इन वृत्तियों को मन की स्थिरता का हेतु माना है, इसे विषयवती प्रवृत्ति–परिकर्म भी कहा जाता है –

''विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी''[7]

(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

चित्त का चतुर्थ परिकर्म

यह विशोका अर्थात् दुःख से रहित एवं ज्योतिष्मती अर्थात् प्रकाश से युक्त दो प्रवृत्तियों के द्वारा मन को एकाग्र करने का परिकर्म है–

'विशोका वा ज्योतिषमती'[8]

योगसिद्धिकार ने इन दो प्रवृत्तियों को चित्तसंवित् और अस्मितासंवित् कहा है। हृदय में स्थित अष्टदलकमल में अवस्थित बुद्धि का साक्षात्कार कराने वाली चित्तसंवित् तथा अस्मिता तत्त्व में स्थित चित्त को राजस् एवं तामस् तरंगों से रहित करने वाली अस्मितासंवित् प्रवृत्ति होती है। इहलोक में ऐसे साधक अपने तथा अन्य जनों के कल्याण का मार्गप्रशस्त करतें है। साधक को अणुमात्र आत्मा को जानकर, 'मैं हूँ' एतत्प्रकारक सम्यक्ज्ञान की लब्धि होती है –

''तमणुमात्रमात्मानमनुविद्याऽस्मीत्येवं तावत् सम्प्रजानीते''[9]

चित्त का पंचम परिकर्म

चित्त का पंचम परिकर्म वीतरागविषयत्व कहा गया है–

'वीतरागविषयं वा चित्तम्'[10]

ऐसा साधक रागादि की भावना से रहित होता है। उसमें किसी का अनिष्ट करने या इष्ट करने की एषणा का अभाव होगा। निरपेक्ष भाव से कर्मकरने वाले मनुष्य यदि आज के समय में हो जाएं तो क्योंकर विश्व को आतंकवाद, धार्मिक उन्माद, जातिवाद, नस्लवाद, लिंगभेद, भुखमरी आदि आधुनिक प्रकार की पूँजीवादी मनोवृत्ति से उद्भूत समस्याओं से जूझना पड़ेगा?

चित्त का षष्ठ परिकर्म

यह अग्रिम सोपान के चित्तकर्म है। इसमें साधक चित्त की एकाग्रता प्राप्त करने के लिए स्वप्न और सुषप्ति के ज्ञान को धारणा का आलम्बनबनाए अर्थात् इन्हें ही ध्येय विषय बनाए। सूत्र हैं–

'स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा'[11]

चित्त का सप्तम परिकर्म

यह परिकर्म वर्तमान में अनेकत्र ध्यान–केन्द्रादि संस्थाओं में व्यवहृत होता है। योगसूत्रकार के अनुसार जो भी अभीष्ट हो, उसके ध्यान से चित्तस्थिर होता है–

'यथाभिमतध्यानाद्वा'[12]

(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

वस्तुतः प्रत्येक बुराई का उद्गम पदार्थ इन्द्रिय एवं मन के संयोग से होता है। यह सप्तप्रकारक चित्त के परिकर्म मनुष्य के मन को एकाग्र करते हैं। एकाग्रता से चित्त का चांचल्य नष्ट होकर सृजनशीलता का मार्ग पुरस्सर होता है।

अतः कहा जा सकता है कि योगसूत्रों की रचना यद्यपि शुंगवंशीय राजापुष्यमित्र के काल द्वितीय शताब्दी ई.पू. अर्थात् आज से लगभग 2200 वर्ष हुई। किन्तु यह सिद्धान्त दिशातीत एवं कालातीत हैं, सार्वभौमिक हैं एवं आत्मोत्थान तदनु सर्वोत्थान की दिशा दिखाते हैं। किसी भी अपराधी की मनोवृत्ति का अपराध करने में बड़ा योगदान होता है। विधिशास्त्र आपराधिकमनःस्थिति;उमदे तमंद्ध को उतना ही दोषी माना है, जितना कि दुराचार;।बजने तमनेद्ध को योगसूत्रों में वर्णित चित्तशुद्धि के परिकर्मों द्वारा उदात्त एवं सामान्य मनोवृत्ति को बल प्रदान करना तथा हिंसक एवं आपराधिक मनोवृत्ति को ऋणात्मकता से घनात्मकता की ओर ले जाया जा सकता है।

उपसंहारः इहलौकिक जीवन एवं पातंजल योगसूत्र

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों (आस्तिक) की गवेषणा के विषय प्रायशः मोक्ष, कर्मबन्धन अथवा कर्मसिद्धान्त, जन्म, मरण, पुनर्जन्म, जीव, ब्रह्म एवं ईश्वर का स्वरूप आदि हैं। इस सभी विषयों को तत्त्व–मीमांसा, प्रमाण–मीमांसा एवं ज्ञान–मीमांसा के द्वारा विवेचित किया है। योगसूत्रों में वर्णित विषयों में अल्पज्ञानी पुरुषों को दैनन्दिन व्यावहारिक उपायों द्वारा ही योग पथ की सिद्धि में लाभदायक मार्ग निर्दिष्ट है। इन सूत्रों के अनुपालन द्वारा न केवल मोक्षमार्ग की लब्धि हेतु साधक अपनी तैयारी करता है, प्रत्युत इस मर्त्यलोक की जीवन–यात्रा भी सुगमरुपेण चला सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. *पातंजलयोगदर्शनम्, डॉ. सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1998.*
2. *धर्मशास्त्र का इतिहास, पंचम भाग, डॉ. पी.वी. काणे, उत्तर प्रदेश हिन्दीसंस्थान, लखनऊ, 2010.*
3. *व्यास भाष्य, योगसूत्र समाधिपाद, 33वाँ सूत्र*
4. *व्यास भाष्य, योगसूत्र समाधिपाद, 34वां सूत्र*
5. *व्यास भाष्य, योगसूत्र समाधिपाद 34वां सूत्र*
6. *व्यास भाष्य, योगसूत्र समाधिपाद, 35वां सूत्र।*
7. *योगसूत्र, समाधिपाद, 35वां सूत्र*
8. *योगसूत्र, समाधिपाद, 36वां सूत्र*
9. *व्यासभाष्य, योगसूत्र, समाधिपाद, 36वां सूत्र*
10. *योगसूत्र, समाधिपाद, 37वां सूत्र*
11. *योगसूत्र, समाधिपाद, 38वाँ सूत्र*
12. *योगसूत्र, समाधिवाद, 39वाँ सूत्र*

(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

REFERENCES

1. Patanjalyogdarshanam, Dr. Suresh Chandra Srivastava, Chaukhamba Surbharti Publication, Varanasi, 1998
2. Dharmashastra ka Itihaas, Fifth Part, Dr. P. V. Kane, Uttar Pradesh Hindi Sansthan, Lucknow, 2010
3. Vyas Bhashya, Yogsutra Samadhipad, 33 sutra
4. Vyas Bhashya, Yogsutra Samadhipad, 34 sutra
5. Vyas Bhashya, Yogsutra Samadhipad, 34 sutra
6. Vyas Bhashya, Yogsutra Samadhipad, 35 sutra
7. Yogsutra, Samadhipad, 35 sutra
8. Yogsutra, Samadhipad, 36 sutra
9. Vyas Bhashya, Yogsutra Samadhipad, 36 sutra
10. Yogsutra, Samadhipad, 37 sutra
11. Yogsutra, Samadhipad, 38 sutra
12. Yogsutra, Samadhipad, 39 sutra